षष्ठ अध्याय

बाणभट्ट की आत्मकथा : नाट्यरुपांतरण की सफलता

विधा परिवर्तन एक बड़ी चर्चित, प्रसिद्ध एवं विकासशील परंपरा के रुप में विकसित हो रही है। बहुत सारे कथानकों का नाटकों में या फिल्मों में पुन:प्रस्तुतीकरण हो रहा है। कविताओं या खंडकाव्यों का नाट्यसंगीत की सहायता से प्रस्तुतीकरण हो रहा है। मनुष्य की प्रकृति प्रयोगधर्मी है। मनुष्य बार बार विभिन्न प्रयोग करता रहता है और उसमें उसे कुछ नया प्राप्त होता है, कुछ नहीं भी प्राप्त होता। जो कुछ अच्छा प्राप्त होता है, वह एक सशक्त धारा के रुप में आगे विकसित होते जाता है।

कथानकों को विभिन्न विधाओं में ढालना भारतीय साहित्य परंपरा में वैसे नयी बात नहीं है। रामायण और महाभारत इन भारतीय महाकाव्यों को कई विधाओं में ढाला गया है, लेकिन वहाँ कथानक के मूल ढाँचे को बरकरार रखकर विकसित करने की स्वतंत्रता कथाकार को होती है। आधुनिक काल में विधाओं का जो परिवर्तन हो रहा है, उसमें परिवर्तित विधा को मूल कथानक के साथ जोड़ा जाता है। उसके साथ तुलना करके देखा जाता है। सामाजिकों की यह प्रवृत्ती ही इस अध्ययन की मूल प्रेरणा है। उसी बात से प्रेरित होकर अध्ययन के लिए यह विषय चुना गया है। सहृदय पाठक खासकर वे जो साहित्य और नाटक, या साहित्य और फिल्मों के जानकार होते है, वे मूल कथानक के उद्देश्य नाट्य कृति में या फिल्मों में किस तरह संप्रेषित किए जा रहे हैं, इस पर उस विधा परिवर्तन की सफलता या असफलता का निर्णय करते हैं।

समीक्षा के क्षेत्र में भी उपयोगिता, या आवश्यकता की कसौटी पर समीक्षा को परखा जाता है। प्रथम तो है साहित्य की किसी विधा की स्वतंत्र समीक्षा। जैसे उपन्यास की आलोचना होने के बाद फिर उसी उपन्यास पर बने नाटक की आलोचना की आवश्यकता है या नहीं। इस का उत्तर यही है विधा परिवर्तन से साहित्य के उद्देश्यों की सफलता जाँचना समीक्षा क्षेत्र का ही कार्य है। कभी कभी यह भी देखा गया है कि विधापरिवर्तन में मूल उद्देश्य पूरी तरह भटक गया है और मूल लेखक जो उद्देश्य संप्रेषित करना चाहते थे वह बदलकर पूरी तरह उसके विरोधी उद्देश्य वह विधा अभिव्यक्त कर रही है। इसका अच्छा उदाहरण है शरतचंद्र चटर्जी की देवदास यह कृति। यह

उपन्यास स्त्री प्रधान उपन्यास है। इसमें नायिका नायक से अधिक हिम्मतवान है, जब कि नायक एक डरपोक व्यक्ति है, जो अपनी कायरता को गम का बहाना बनाता है। उपन्यास में नायिका त्याग करती हुई दिखायी गयी, वहाँ नायिका का दु:ख प्रधान है, जब कि फिल्म में नायक का दु:ख प्रधान बन जाता है, और उसके शराब पिने का कारण उसकी कायरता ना होकर नायिका बन जाती है। इस तरह वह फिल्मांकन मूल उद्देश्यों से बिल्कुल विरोधी बन जाता है। समाज में अगर इस तरह के विरोधी उद्देश्य संप्रेषित हो रहे हों तो उस पर टिप्पणी करना, लिखना समीक्षा का ही कार्य है।

अब थोड़ी सी बात कि क्या ऐसा होने से विधापरिवर्तन नहीं होने चाहिए? क्या विधापरिवर्तन होने चाहिए या नहीं? क्या विधापरिवर्तन से कुछ लाभ होता है? इसके उत्तर में भी एक सामाजिक और अध्ययनकर्ता होने के नाते यही उत्तर दिया जा सकता है कि विधापरिवर्तन होने चाहिए। इसके लाभ बहुत है, क्योंकि साहित्य पढ़ने की हर किसी की अपनी अलग अभिरुचि होती है। उस रुचि के अनुसार ही वह साहित्य का अध्ययन कर सकता है। साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है उद्देश्यों को संप्रेषित करना। ये उद्देश्य बहुत बार विचारोत्तेजक होते है। अगर ऐसे उद्देश्य समाज तक ले जाने है, तो साहित्य अधिक से अधिक लोगों तक पहूँचना चाहिए और उस दृष्टि से जिस भी विधा में यह संभव हो साहित्य लोगों तक संप्रेषित होना जरुरी है। चूँकि यहाँ पर साहित्य के उद्देश्यों की चर्चा चल रही है, और यह अध्याय विधा परिवर्तन की सफलता का अध्ययन करना यह है, तो स्पष्ट है कि सफलता असफलता नाँपने के प्रतिमान उद्देश्यों की संप्रेषणीयता यही होना चाहिए और उसी के आधार पर इस अध्याय में संबंधित विधा का अध्ययन किया जाएगा।

अ) कथानक उद्देश्यों की सफलता

प्रस्तुत अध्ययन में उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर विधा परिवर्तन का नाटक के तत्त्वों के आधार पर तौलनिक अध्ययन किया गया है। कथानक तथा पात्र और संवादो की तुलना की गयी है। किसी भी कृति में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है उस कृति का उद्देश्य। उस कृति के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है कि उस कृति के उद्देश्य कहाँ तक संप्रेषित किए जा चुके है। अगर उस कृति के उद्देश्य पाठकों तक ठीक से संप्रेषित नहीं होते है तो स्पष्ट है कि वह उस कृति का बड़ा दोष है। किसी भी रचनाकार के लिए यह महत्त्वपूर्ण है वह रचना समीक्षकों के लिए ना लिखकर पाठकों के लिए लिखें। पाठकों में वे उद्देश्य कहाँ तक पहूँचते है यह देखना जरुरी है। नाटक में तो दर्शक प्रत्यक्ष रुप में उसे देखते है। वहाँ तो कोई समीक्षक उनकी सहायता नहीं करता कि आप इस कृति का आस्वादन ऐसे करें। वहाँ दर्शक स्वयं ही होता है और नाट्यलेखक को अपने विचार

दर्शक तक पहूँचाने हैं। वह कितनी सफलता से हो पाया यही नाटक की सफलता असफलता का परिमाण हो सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में भी बाणभट्ट की आत्मकथा इस उपन्यास के उद्देश्य नाटक में कैसे संप्रेषित हो सके है और दर्शकों एवं पाठकों में वे कैसे पहूँचते है, यह देखा जाएगा।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में आचार्य द्विवेदी जी ने बड़े सुंदर संवाद लिखे हैं। उन्हीं के आधार पर , उन्हीं के उपशीर्षक बनाकर नाटक में वे उद्देश्य दर्शकों और पाठकों तक कैसे पहूँचते है, यह देखा जा सकता है। यहाँ पर वह प्रयोग कर उन्हीं के आधार पर अध्ययन किया जा रहा है। वैसे भी रचनाकार के कथनों के अलावा अन्य सशक्त परिमाण नहीं हो सकते।

4) असत्य सत्य के नाम घर बना बैठा है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी समाज की सच्चाइयों को गहराई से देखनेवाले विद्वान हैं। गहराई से दिखने पर जो सच्चाईयाँ दिखी उसे गंभीरता से अभिव्यक्त करने का साहित्यिक साहस भी उन्होंने दिखाया है। अक्सर अध्ययन कर्ताओं और बुद्धवादियों में यह प्रवृत्ती दिखाई देती है, कि या तो पूरी तरह सब कुछ नकारते है, या फिर सत्ता में बैठे लोगों की, या सामाजिकों की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते है। पूरी तरह गहराई में जाकर कुछ दोषों को खोजने की हिम्मत उनमें नहीं दिखाई देती। आचार्य जी ने बुद्धीवादियों की इन सीमाओं को भी तोड़ा है। एक साहित्यिक के नाते उन्होंने जो चिंतन प्रस्तुत किया है, वह सामाजिक अध्ययन की दृष्टी से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

बुद्धीवाद जब निष्पक्षता से देखता है तो वह यह पाता है कि समाज में भी कुछ दोष व्याप्त है। मनुष्य की उत्क्रांती में सामाजिक रचना के विकास में कुछ दोष घर कर के बैठे है। उसे ही साहित्यिक अभिव्यक्ति देते हुए आचार्य जी लिखते है, ''निपुणिका में इतने गुण हैं कि वह समाज और परिवार की पूजा का पात्र हो सकती थी, पर हुई नहीं। इतने दिनों के साथ हूँ, उसके चरित्र में मैंने कहीं कलुष नहीं देखा। वह हँसमुख है, कृतज्ञ ा है, मोहिनी है, लीलावती है-ये क्या दोष है? मेरा चित्त कहता है कि दोष किसी और वस्तु में है, जो इन सारे सदगुणों को दुर्गुण कहकर व्याख्या करा देती है। वह वस्तु क्या है? निश्चय ही कोई बड़ा असत्य समाज में सत्य के नाम घर बना बैठा है।''[1] इस असत्य की व्याख्या आचार्य जी ने प्रस्तुत उपन्यास में की है। समाज में सत्य के नाम पर चल रहे इस असत्य को उद्घाटित करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य रहा है। अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इस उद्देश्य के साथ जुड़कर आते हैं। इसी उद्देश्य को मुख्य आधार बनाकर द्विवेदी जी ने प्रस्तुत उपन्यास की रचना की है। उपन्यास की वर्णन विश्लेषण क्षमता और नाटक की संवाद-अभिनय क्षमता में यह उद्देश्य कितनी सफलता से संप्रेषित हुआ

यह एक प्रश्न है। उसका उत्तर यही है कि भले ही कम अधिक मात्रा में क्यों न हो नाटककार ने यह उद्देश्य संप्रेषित करने की कोशिश की है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' इस कथानक में सब से अधिक सक्रिय पात्र है निपुणिका। वही सब कुछ करने के पिछे मुख्य आधार, प्रेरणा, विचार सब कुछ है। उपन्यास में अब तक की घटनाएँ जो घट चुकी है जैसे भट्टिनी कहीं से भगाकर अंत:पूर में बंदी बनाई जा चुकी है। यह समाज का बहुत बड़ा ढोंग है, असत्य है। लेकिन उसे ही सत्य माना जाता है। उसके लिए सामाजिक और धार्मिक आधार ढूँढे जा चुके है। जो रक्षक होते है, वे ही अपने स्वार्थ और ऐय्याशी के पिछे किस तरह राक्षस होते है इसका यह अच्छा उदाहरण है। फिर इस के लिए नियम भी बनाए जाते है। अंत:पूर से उस स्त्री को बाहर निकलना तो असंभव हो ही जाता है किसी का उसको बचाना भी निषिद्ध है। निपुणिका का अपराध यही है कि उसने भट्टिनी को बचाया है। हालाँकि दंड वास्तविक अपराधी को मिलना चाहिए। वह न होकर अच्छे काम करनेवाला ही दंडित होता है। अपराधियों को दंड न मिलने का कारण कृष्णवर्धन बताते है, ''भट्ट, जिस छोटे राजकुल की करतूतों के कारण कान्यकुब्ज के राजवंश को देवपुत्र-नन्दिनी के कोप का भाजन बनना पड़ा, वो अपने किए का दण्ड अवश्य पाएगा। ये मेरी प्रतिज्ञा है। जो इन अपराधियों के विरुद्ध मैं तुरंत कोई कार्यवाही नहीं कर रहा, उसका कारण राजनीति की जटिल परिस्थितियाँ है।''[2] नाटक का यह संवाद उपन्यास के उस उद्देश्य को अभिव्यक्त करता है। कुछ ऐसा असत्य है, जिसे सत्य मानकर समाज, धर्म और राजनीति चल रही है। कुमार की विवशता यही है कि लोग छोटे राजकुल को मानते है। लोग उस मौखरी वंश को मानते है क्योंकि उनके पूर्वज अच्छे थे। छोटा राजकुल इसी भावना का लाभ उठाता है। उसका मन से गिरना, चारित्रिक पतन एक सत्य है। उस सत्य की ओर न देखकर हर कोई भ्रामक सत्य की ओर देखता है। कथाकार इस ओर संकेत करना चाहते है। इसी तरह के असत्य समाज में घर कर बैठे है। कुमार कृष्णवर्धन और महाराज हर्षवर्धन भी इस असत्य का लाभ उठाते हैं।

महामाया अघोरभैरव को बंदी बनाने के समय जनता को संबोधित करते हुए यह कहती है कि महाराज की चामरधारिणियाँ और करंकवाहिनियाँ क्या भगाई हुई नहीं है। क्या वे अपने माता पिता की नयन ताराएँ नहीं हुआ करती? महामाया का यह प्रश्न सीधे शासन व्यवस्था के अस्तित्व और उद्देश्यों पर प्रश्नचिन्ह निर्माण करता है। शासन व्यवस्था का उद्देश्य होता है, जनता कि रक्षा करना। राजा के लिए उसकी प्रजा उसके संतान जैसी होती है लेकिन देवपुत्र जैसे राजा भी जनता की संतान और अपनी संतान में भेद करते है। भट्टिनी के लिए राजा जितने निराशा होते है, उतने दूसरे किसी के

लिए नहीं। फिर भी इन राजा महाराजाओं और देवपुत्रों को जनता के रक्षक के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। जनता को यह दिखाने और समझाने की कोशिश की जाती है कि उनके अलावा जनता सुरक्षित नहीं रह सकती जब कि वास्तव यह है कि युद्ध के मैदान में तो जनता ही लड़ती है। इसलिए अमृत के पुत्रों मृत्यू का भय माया है कहकर महामाया भारतीय जनता को जगाती है। उपन्यास के इस पक्ष को लेकर डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि, ''बाणभट्ट की आत्मकथा में एक ओर सामन्ती मूल्यों की अस्वीकृति है, तो दूसरी ओर सामान्य मानवीय विशिष्टताओं की प्रतिष्ठापना। धार्मिक सहिष्णुता, समानता एवं नारी की गौरवपूर्ण मर्यादा जहाँ स्थापित करने की चेष्टा हुई है वहीं मानव सहृदयता एवं संवेदना का विराट अंकन भी। इसमें जहां मध्यकालीन सांस्कृतिक परम्पराओं को स्थापित किया गया, वहीं उसका सामंजस्य आधुनिकता बोध से भी बिठाया गया है और यही इस उपन्यास की महत्ता है।''[3]

राजनीति में सत्य और असत्य सापेक्ष होता है। जिस सत्य को जनता सत्य मानती है, राजनीति उसे असत्य मानती है और असत्य को सत्य भी मानती है। निपुणिका भट्टिनी को छोटे महाराज के अंत:पूर से निकालती है। वस्तुत: यह मानवता की दृष्टि से और धर्म की दृष्टि से भी बड़ा महान कार्य है। यह शाश्वत सत्य है। इस के लिए उसे बड़ा पुरस्कार मिलना चाहिए लेकिन मिलता है दंड। वो और बाणभट्ट मृत्यूदंड के दोषी होते है और भट्टिनी के साथ जान बचाने के लिए उन्हें भागना पड़ता है। निपुणिका का यह कार्य जब लाभ की वस्तु बनने की संभावना होती है, तब कुमार कृष्णवर्धन जैसे कुटनीतिज्ञ और राजा हर्षवर्धन जैसे सम्राट भी अपनी पूरी नीतियाँ बदलते है। निपुणिका बच जाती है। भट्टिनी सम्मान योग्य बन जाती है और बाणभट्ट सभापंडित बन जाते है। राजनीति का यह सापेक्षी सत्य आचार्य द्विवेदी जी ने जिस तरह उपन्यास में अभिव्यक्त किया है बिल्कुल उसी अंदाज में नाट्यरुपांतरकार ने नाटक में लाया है।

नाटक में जो पक्ष नहीं आ पाया है वह है निपूणिका का पूर्वजीवन। हालाँकि इस के संकेत मिलते है फिर भी वह सत्य और असत्य नाटक में नहीं आ पाया है। वह है निपुणिका की अपनी जिजिविषा। निपुणिका विधवा हुई। उसी काल में उसकी जाति में विधवा विवाह का प्रचलन बंद हुआ। वह विधवा का जीवन जिसमें उसके आर्थिक, शारिरिक एवं मानसिक सभी अधिकारों को नकारा जाता है, जीना नहीं चाहती थी। एक सामान्य इन्सान की जिंदगी जिसमें वह हँस खेल सकता है हर गतिविधि का हिस्सा बन सकता है जीना चाहती थी। उस के कारण उसे वहाँ से भागना पड़ा। भागने का तात्पर्य ही है कि निपुणिका अपने समाज में विधवा बनी रहकर सामान्य जीवन नहीं जी सकती थी। उन यातनाओं और वेदनाओं को वह जानती थी। एक इन्सान की दृष्टी से यह भी

सत्य और असत्य का बड़ा प्रश्न है। प्रकृति ने जो शरीर इन्सान को दिया है उसी के अनुसार ही जीना इन्सानी समाज ने नकारना यह भी एक बड़ा असत्य है। इन्सानों ने अपने नियम बनाना तो ठिक है, लेकिन नियमों की जगह कड़ी बाधाएँ निर्माण करना और उन्हें ही सत्य मानना बड़ा विचित्र है यहाँ पर भी एक बड़ा असत्य सत्य के नाम घर बना बैठा है, यह दिखाई देता है। नाटक में उपन्यास की तरह स्पष्ट संकेत इस सत्य की ओर नहीं होता।

भारतीय साहित्य में पुराणों से लेकर उपन्यासों तक पाप-पूण्य, कर्म-धर्म आदि पर बहुत कुछ लिखा गया है। बड़े आश्चर्य की बात है कि सामान्य जन के हित का, उनके दु:ख दर्द का वास्तविक प्रश्न अछुता रह गया। उनके दु:खों को चमत्कारों में ही देखा गया। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जैसे कुछ उपन्यास में सत्य-असत्य की बुनियादी चर्चा करके आचार्य जी ने जन के कल्याण की बात ही महत्त्वपूर्ण मानी है।

लोककल्याण प्रधान वस्तु है

प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य द्विवेदी जी का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है लोककल्याण को महत्त्वपूर्ण मानना। उपन्यास में अभिव्यक्त लोककल्याण भावना को लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह कथन पुष्ट करता है कि, ''इस उपन्यास में केवल घटनाओं एवं तिथियों का आकलन भर नहीं है। इसमें जहाँ व्यापक युग सत्य को पाने की चेष्टा की गयी है, वहीं इने-गिने पात्रों को लेकर उनके व्यक्तित्व की समग्रता भी स्थापित की गयी है। यही कारण है कि एक ओर जहाँ एक युग विशेष राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं की सूक्ष्म व्याख्या की गयी है, वहीं दूसरी ओर मानव मूल्यों को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न हुआ है।''[4] उपर उपन्यास की ऐतिहासिकता के संदर्भ में जो चर्चा की गयी है, उसमें यह माना गया है कि उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमी रखी है। उसमें बहुत सी वर्तमान समस्याओं की चर्चा की है। वैसे लोककल्याण यह राजकीय संस्थाओं का आधुनिक काल का कार्य माना जाता है। प्राचीन काल में शासन व्यवस्था का यह कर्तव्य नहीं माना जाता था। द्विवेदी जी प्राचीन काल की पृष्ठभूमी में आधुनिक काल की चर्चा कर रहे हैं, इससे स्पष्ट है कि वे इस उपन्यास में समकालीन संदर्भों की चर्चा कर रहे हैं। नाटककार अमिताभ श्रीवास्तव जी ने नाट्य रुपांतरण में यह भी उद्देश्य चित्रित किया है। उनके द्वारा किए गए नाट्यरुपांतर की यह भी एक सफलता मानी जाएगी।

लोककल्याण का महत्त्वपूर्ण उल्लेख कुमार कृष्णवर्धन के संवाद में है। कुमार कृष्णवर्धन राजा हर्षवर्धन के महासान्धिविग्रहिक हैं। वे बड़े कूटनीतिज्ञ हैं। उन्हें हमेशा कूटनीति में झूठ का आश्रय लेना पड़ता है। भट्टिनी को बचाने के बाद भट्ट को कुमार

की सहायता मिलती है। उन्हें बचाकर मगध की ओर भेजने के लिए भट्ट को कई बातों की रचना करनी पड़ी थी। झूठ भी बोलना पड़ा था। उस सब कुछ का हवाला और संकेत देते हुए कुमार बाणभट्ट से कहते है, ''तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मैं भी करता हूँ; परन्तु जो समाज व्यवस्था झूठ को प्रश्रय देने के लिए ही तैयार की गई है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण- कार्य करना चाहों, तो तुम्हें झूठ का ही आश्रय लेना पड़ेगा। सत्य इस समाज-व्यवस्था में प्रच्छन्न होकर वास कर रहा है। तुम उसे पहचानने में भूल न करना। इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी बात को ज्यों-का-त्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है जिससे लोक का आत्यन्तिक कल्याण होता है। ऊपर से वह जैसा भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वही सत्य है।''[5] सत्य की इतनी स्पष्ट और सुंदर तथा सही व्याख्या मात्र भारतीय ही नहीं विश्व साहित्य में भी दुर्लभ है। लोककल्याण ही सत्य है और सत्य ही लोककल्याण है। कुमार कृष्णवर्धन उसके लिए प्रयासरत हैं। वे कहीं राजनीति में सीमित हैं। लोककल्याण की भावना का वास्तविक प्रतिक है निपुणिका। निपुणिका में वह प्रबल इच्छा है जिससे वह चाहती है कि सामान्य से सामान्य जन अपनी इच्छा के अनुसार जिएँ। भट्टिनी यद्यपी राजकुमारी है पर वह बंदिनी बनकर एक अतिसामान्य नारी बन जाती है। निपुणिका उसके आनंद की कल्पना करती है। निपुणिका का उत्सर्ग एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण बन जाता है।

लोककल्याण में कुमार कृष्णवर्धन या राजा हर्षवर्धन का कोई बड़ा योगदान उपन्यास में या नाटक में नहीं दिखाई देता, यद्यपि कुमार ही लोककल्याण की बात कर रहे हों। जन के लिए कुछ करने की हिम्मत धार्मिक क्षेत्र में काम करनेवाले लोगों में ही थी। उसका प्रथम उदाहरण तो गुरु अघोरभैरव है। इतिहास में अघोरपंथियों को या कापालिकों को एक डरावने रुप में देखा गया है। नरबलि जैसी अमानवी प्रथाओं के कारण वह पंथ काफि बदनाम भी हुआ। विचारधाराओं के प्रवाह में ऐसे बुरे विचार उस धर्म में आए भी हो लेकिन उसका जो मूल दर्शन है उसे अघोर भैरव बड़ी स्पष्ट भाषा में व्यक्त करते है, बाणभट्ट को वे मन में निर्मित बातें न दबाने का उपदेश देते हैं। लोककल्याण का यह बहुत बड़ा दर्शन है। शायद उपदेश कर्ताओं की गलती के कारण यह कहीं दब गया हो, लेकिन नष्ट नहीं हुआ। मानवी मन बहुत बड़ी वस्तु है। यह आवश्यक है कि वह नियंत्रित होना चाहिए परंतु उसे दबाना गलत है। वह गंभीर समस्याएँ निर्माण कर सकता है। मनुष्य जाति खासकर भारतीय समाज उन्हीं समस्याओं को लेकर आगे बढ़ा है। वह चाहता कुछ और है, और दिखाता या करता कुछ और है। उस के कारण न वह देश की रक्षा कर सका न ज्ञान के या विज्ञान के क्षेत्र में कुछ विशेष विकास कर सका। यह समस्याएँ है। उसकी ओर स्पष्ट संकेत उपन्यासकार ने किया है।

नाटक में अघोरभैरव बड़े प्रभावी ढंग से उसे अभिव्यक्त करते हैं।

अघोरभैरव के विचारों की ही प्रतिध्वनि है महामाया। महामाया लोककल्याण की भावना बहुत अधिक प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती है। महामाया महाराजाओं और सामंतों की प्रशंसा का तीव्र विरोध करती है। वह जनता को सचेत करती है कि जनता की रक्षा अगर कोई कर सकता है तो वह स्वयं जनता ही है। राजा, महाराजा, सामंत और उनकी वेतनभोगी सेना जनता का रक्षण नहीं कर सकती। जनता को संबोधित करते हुए महामाया कहती है, ''तुवरमिलिन्द और श्रीहर्षदेव सदा नहीं रहेंगे; परंतु तुम्हें सदा रहना है। अमृत के पुत्रों, मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा, महाराजा और सामंत स्वार्थ के गुलाम बनते जा रहे हैं। प्रजा भीरु और कायर होती जा रही है। विद्‌वान और शीलवान नागरिकों की बुद्धी कुंठित होती जा रही है। अपने आपको बचाओ, धर्म पर दृढ़ रहो, न्याय के लिए मरना सीखो, ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक एक हो जाओ। अमृत के पुत्रों, मैं भविष्य देख रही हूँ। अमृत के पुत्रों राजपुत्रों की वेतनभोगी सेना की आशा छोड़ो, मृत्यू का भय माया हैं।''[6] महामाया का यह संदेश निश्चित ही लोककल्याण के महत्त्व को स्पष्ट करता है। उपन्यासकार ने लोककल्याण का जो उद्देश्य मूल कथानक में भर दिया है, उसे पूरी सार्थकता से रुपांतरकार ने अभिव्यक्त किया है।

नाटक में भी उपन्यास का यह उद्देश्य बड़ी स्पष्टता से आ जाता है। इस उद्देश्य की सफलता यहाँ तक है कि उपन्यास न पढ़ा हुआ पाठक भी उस उद्देश्य को आसानी से समझ सकता है। नाटक के कथानक की यह विशेष सफलता है। हिंदी उपन्यास और नाट्यसाहित्य में भी ऐसा उद्देश्य स्पष्टता से अभिव्यक्त करनेवालों की संख्या कम है। ऐसी स्थिती में यह उपन्यास और उस उद्देश्य को सफलता से वहन करनेवाला नाटक हिंदी साहित्य में एक विशेष प्रयोग माना जाएगा। इससे निश्चित ही लोककल्याण की भूमिका रखनेवाले साहित्य कृतियों की कमी पूरी होगी। इससे एक समृद्ध साहित्य की पहचान निर्माण होगी।

कहाँ खिंचा जा रहा हूँ

'बाणभट्‌ट की आत्मकथा' उपन्यास के संदर्भ में अधिक चर्चा हुई है बाण और भट्‌टिनी के प्रेम की। उन दोनों में एक ओर है निपुणिका। वह बाण से प्रेम करती है और उज्जयिनी से भागने के बाद यानी छः साल के बाद स्थाण्वीश्वर में जब वह मिलती है तो स्पष्ट ही बताती है, 'मुझे तुमसे मोह हो गया था।' वह स्थिती अब ना थी लेकिन विचार तो पूरी तरह से नहीं मरते।

उपन्यास में बाण का व्यक्तित्व एक घुम्मक्कड व्यक्तित्व है। वह किसी एक जगह नहीं रहा। वह किसी एक व्यक्ति या स्त्री से भी न जुड सका। वह स्वयं स्वीकार

करता है कि उसका व्यक्तित्व आवारा व्यक्तित्व है। उसे किसी चिज के प्रति मोह नहीं, स्नेह नहीं लोभ नहीं। वह बचपन में ही माँ का प्रेम खो चुका था। पिता निरंतर वैदिक क्रियाओं में व्यस्त रहते। इससे संकेत मिलते है कि बाण का पालन पोषण विपरित स्थितियों में हुआ था। उसको किसी का लगाव नहीं ना किसी का उसे। वह बड़ा हुआ अपनी भिन्न भिन्न क्रियाओं में। किसी एक ही क्रिया में उसका मन न लगा। शायद इसी कारण से वह धर्म की कोई क्रिया न सीख सका, ना उसका मन उसमें रमा। नाटक के आरंभ में ही उपन्यास की तरह ही बाण अपना यह परिचय देता है।

स्थाण्वीश्वर में आने के बाद उसे निपुणिका मिलती है और एक अनोखे काम में वह लग जाता है। बाण कवि था, नट था, निर्देशक था लेकिन वास्तविक जीवन में कोई बड़ी जिम्मेदारी उसने न निभाई थी। अब वह वक्त आया। वह भी एक राजकुमारी को बचाने का। स्त्री में जो कुछ गुण है उसका बखान भी इस उपन्यास में किया गया है। उसके अनुसार स्त्री निषेधरुपा है। अपने आप को किसी के सुख के लिए खपा देने की भावना स्त्री है। उसके बदले में स्त्री खासकर परिवार की स्त्री चाहती भी बहुत कुछ है। वह स्नेह चाहती है, स्नेह उँडेलती है और उसके पिछे पुरुष को उतना ही आकर्षित करती है। स्त्री का यह मोह लेना इतना आकर्षक होता है कि बाण जैसा आवारा, घुम्मक्कड और निर्मोही व्यक्ति भी कह उठता है, 'कहाँ खिंचा जा रहा हूँ।' बाण जैसे व्यक्ति के लिए भी यह मोह, यह बंधन, यह आकर्षण एक मधुर आकर्षण बन जाता है।

आकर्षण की यह शुरुआत भट्टिनी के सहज वर्तन से होती है। भट्टिनी यद्यपि यवन है, लेकिन एक भारतीय स्त्री के गुण उसमें हैं। एक भारतीय नारी, परिवार के श्रेष्ठ पुरुष व्यक्ति को अन्न खिलाए बिना भोजन ग्रहण नहीं करती। राजमहल के बंदिवास से बाहर निकलने के बाद जब पहली बार वे भोजन कर रहे हैं तो भट्टिनी उसी भारतीय नारी के अनुसार भट्ट को भोजन परोसती है। संकोच करनेवाला भट्ट जब अपनी झिझक भट्टिनी के सामने व्यक्त करता है, तो भट्टिनी बड़े अधिकार वाणी से उसे कहती है, ''मुझे इतना अधिकार तो मिलना चाहिए भट्ट कि अपनी बुद्धी से निर्णय कर सकूँ कि गौरव किसे मिले किसे नहीं।''[7] भट्टिनी राजकुमारी है। अपने अधिकारों के प्रति वह एक राजकुमारी की तरह ही सोचती है, लेकिन उसका यह संवाद एक राजकुमारी का संवाद नहीं है, बल्कि एक संसारी नारी जिस अधिकार से बोलेगी वही अधिकार है। भट्टिनी का यह अधिकार बाण के प्रति उसके मन में जो मोह निर्माण हुआ है उसके कारण बना अधिकार है। बाण के प्रति अपने मन का आकर्षण भट्टिनी महामाया के सामने खुले शब्दों में अभिव्यक्त करती है। वह कहती है, ''मातः, भट्ट ने चकित मृग शिशु के समान मेरी ओर देखा, मानो उन्होंने कोई नवीन प्रकाश, कोई

अभिनव ज्योती देखी हो। उनके दीप्त ललाट-पट्ट पर भक्ति की शुभ्र किरण विराजमान थी। उनके विमल विशाल नयनों में उज्ज्वल प्रकाश इस प्रकार फूट रहा था, मानो दो ज्वलन्त शुक्रग्रह चमक रहे हों। उनकी कोमल-मधुर वाणी में एक अद्‌भूत मिठास थी। S S S S मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि भगवान ने नारी बनाकर मुझे धन्य किया है; मैं अपनी सार्थकता पहचान गई।''[8]

भट्टिनी का यह मोह, अधिकार और आकर्षण तब अधिक निखरता है जब बाणभट्ट भद्रेश्वर दुर्ग से स्थाण्वीश्वर होकर वापिस आता है। भट्ट वहाँ निश्चित उद्देश्य के लिए बुलाए जाते है। वह कुमार कृष्णवर्धन की कुटिल नीति के अनुसार राजदरबार के सभापण्डित नियुक्त किए जाते है, तथा भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर लाने की और लोरिकदेव को मनाने की जिम्मेदारी भी भट्ट पर सौंपी जाती है। भट्ट जब भद्रेश्वर पहूँचते है तब निपुणिका उनकी कड़ी भर्त्सना करती है और भट्टिनी बेहद बेचैन होती है। लोरिकदेव अपने दल बल के साथ स्वागत में पहूँचते है। ये सारी घटनाएँ होने के बाद भट्टिनी बाण को भोजन के बारे में पूछती है और भीतर चलने कहती है। बाण भट्टिनी की सारी आज्ञाएँ मानने लगते है। आवारा और घुम्मक्कड बाण अनायास इस आकर्षण की ओर खिंचे जाते है। नाटक में यह आकर्षण पूरी तरह से चित्रित नहीं हो पाया है। लेकिन इसके स्पष्ट संकेत जरुर मिलते हैं।

पुरुष में पौरुष होना चाहिए

कथाकार को बहुश्रुत और बहुआयामी कहते हैं। क्यों कहते है उसका आधार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे कथाकार हैं जिनका व्यक्तित्व और लेखनकर्म शब्दों में बाँधने जितना सीमित नहीं हैं। उनके लेखनकर्म संस्कृति, इतिहास, दर्शन, भूगोल, धर्म, समाज तो है ही साथ ही मानवी मन की ऐसी पर्तों का उद्‌घाटन उन्होंने किया है कि पाठक उन्हें देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है। उन्होंने पुरुष होने की व्याख्या भी की है और नारी होने की भी। 'नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसे मुक्त करने में' जैसे प्रभावी वाक्य भी इस उपन्यास में है तो नारी के मन का वह पक्ष भी इस उपन्यास में है, जिसमें नारी किसी साधारण नहीं बल्कि विशेष वीर पुरुष के साथ ही जीवन साथी बनकर जीना चाहती है। उसके लिए आवश्यक होता है कि वह वीर पुरुष हों, सर्व गुणों से संपन्न हों और उसके प्रति वह प्रेम करें। वह उसकी बात मानें। वह इस शर्त पर उसमें निरंतर पुरुषत्व की खोज करती रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में यह उद्देश्य बड़ी सहजता से पिरोया गया है। निपुणिका बाण में पुरुषत्व को खोजती है। सब से पहले तो उसने चाहा था कि बाण उसका बन जाए। जब संभव न हुआ तो फिर कई सालों के बाद उसने बाण पर नयी जिम्मेदारी डाली। बाण वैसे कोई जिम्मेदारी उठानेवाला

आदमी नहीं है। लेकिन निपुणिका के कहने पर बाण यह जिम्मेदारी उठाता है। निपुणिका को ड़र है कि बाण कब यह कह उठेगा कि मैं चला। यह ड़र ही दर्शाता है कि निपुणिका बाण में एक पुर्ण पुरुष की खोज में है, जो समस्याओं का डटकर सामना करें उससे भागे नहीं।

बाणभट्ट निपुणिका के कहे अनुसार सब करता है। निपुणिका शिविकाओं पर बाण के देरी से आने पर भी गुस्सा करती है। वह बाण पर अपना विशेष अधिकार समझती है। धीरे धीरे वह बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी का आकर्षण और स्नेह जान चुकी है। वह इस बार तो भी बाण के एक पुरुष की तरह वर्तन की अपेक्षा करती है, जिसमें वह चाहती है कि बाण भट्टिनी को घर के सदस्य की तरह या प्रेमिका की तरह डाँटें। निपुणिका कहती है, ''भट्टिनी तो बालिका है। उन्हें संसार की कटुता का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। वे तुम्हें समझ नहीं सकती। धिक भट्ट! पुरुष में पौरुष होना चाहिए। तुमसे मैं पूछती हूँ कि तुमने भट्टिनी से कभी पूछा क्यों नहीं कि वे गंगा में क्यों कूद पड़ी? तुमने कल उनके अस्वाभाविक तारल्य पर उन्हें कसके डाँट क्यों नहीं दिया?''[9] यद्यपि निपुणिका एक पुर्ण पुरुष की खोज में है, लेकिन बाण स्वयं बहुत सी दुविधाओं में है। वह भट्टिनी के साथ रहकर स्वयं को ही अब परम आश्रित मानता है। वह भट्टिनी और निपुणिका के कहने पर ही कुछ करता है। निपुणिका के उसके पौरुष को ललकारने के बाद भी वह अधिक उत्तेजित या उत्साहीत नहीं होता। वह यह स्वीकार नहीं करता कि वह भट्टिनी का अभिभावक बनने योग्य है। वह अपने आप को भट्टिनी का सेवक ही मानता है। वह निपुणिका से स्पष्ट ही कहता है कि अधिक मोहग्रस्त नहीं होना चाहता। वह भट्टिनी को उनके पिता तक पहूँचाकर छुट्टी लेगा। बाण एक कवि है। साहित्यकार की वृत्ती उसमें झलकती है, जब कि भट्टिनी और निपुणिका को उसके अंदर के पुरुष की तलाश है।

राजनीति के कुटिल चक्र में फँसकर भट्ट जब सभापण्डित बनकर और भट्टिनी के लिए मौखरी रानी राज्यश्री का निमंत्रण लेकर आता है तब इन दोनों को भट्ट के अंदर के पुरुष को अलग तरिके से ललकारने की आवश्यकता महसूस होती है। निपुणिका तो बाण को कड़े शब्दों में धिक्कारते हुए कहती है, ''धिक्कार है भट्ट! तुम कैसे भट्टिनी का अपमान करने पर राजी हो गए? लंपटों की शरण देनेवाले कान्यकुब्ज के राजा का सभासद बनना तुम्हें स्वीकार्य कैसे हो गया? किस बुद्धी ने तुम्हें मौखरियों की रानी का निमन्त्रण ढोने को उत्साहित किया?''[10] नाटक का यह संवाद निपुणिका के अंदर की वह तीव्र भावना, जिसमें वह सोचती है कि बाण अपनी बुद्धी से कुछ ऐसा सोचें कि भट्टिनी की मानमर्यादा बनी रहें और उसके अनुसार हिम्मत से एक

पुरुष की तरह वर्तन भी करें। भट्टिनी को भी बाण का यह वर्तन उतना पसंद नहीं आता। वह रानी के निमंत्रण को नकारते हुए कहती है, ''मुझे अवधूतपाद की शरण में ले चलना.....अथवा जहाँ कहीं भी तुम्हें उचित लगे, किन्तु मौखरियों या कान्यकुब्जेश्वर का आतिथ्य मैं नहीं स्वीकार कर पाऊँगी।''[11] बाणभट्ट के अंदर के पुरुष की तलाश नाटक में इस तरह अभिव्यक्त होती है। उपन्यास का यह पक्ष भी बड़ी सार्थकता से नाटक में अभिव्यक्त हुआ है। बाणभट्ट के अंदर के पुरुष की तलाश भट्टिनी उसके विराट उद्देश्य अर्थात रागात्मक हृदय की पूर्ति में भी खोजती है।

विकार कहाँ जाएँगे

मानवी जीवन में विकारों की अपनी समस्याएँ रही हैं। उसे कहाँ तक नियंत्रित करना और कहाँ तक बरकरार रखना यह टेढी खीर है। भारतीय धर्म और दर्शन में इस पर बहुत कुछ लिखा गया है। खासकर हिंदू धर्म में षड्विकारों को दबाने का पक्ष रखा और उसे दबाने की सही -गलत विधियाँ भी बताई। यह लड़ाई वास्तव में वैदिक धर्म और तांत्रिक धर्म की लड़ाई है। हिन्दी के वरिष्ठ समीक्षक आ. विश्वनाथप्रसाद तिवारी जी ने शरीर की प्रवृत्ति पर अपना मत बड़ी स्पष्टता से व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है, ''यौन प्रवृत्ति मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है और जो स्वाभाविक है वह अश्लील नहीं हो सकती। स्वाभाविक और सहज होना श्लील होता है। कृत्रिमता ही अश्लीलता है। देह से पवित्र कोई चीज नहीं होती। वह पूज्य है। वह चाहे किमती वस्त्रों में ढंका हो या नंगा हो उसे अश्लीलता मानना मानवीय पवित्रता का असम्मान करना है। हमारे देश के चिन्तन की यह एक बहुत बड़ी खामी रही है कि वह भौतिक-वास्तविक संसार को हेय समझकर उसकी उपेक्षा करता रहा है।''[12] प्रस्तुत उपन्यास में बाण वैदिक क्रियाओं को जाननेवाला ब्राह्मण है। उसके प्रतिपक्ष में अघोरभैरव है जो इच्छाओं को न दबाने के पक्ष में अपनी बात रखते हैं। नाटक में यह बात बड़ी स्पष्टता से अघोरभैरव के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। वे विकारों को न दबाने के पक्ष में हैं। मदिरा अभिव्यक्ति के सुव्यक्ति का कारण है यह तर्क भी महामाया बाण को देती है। लेकिन उपन्यास में इन विकारों को बहने देने के दुष्परिणामों का संकेत भी है। वह है भट्ट की बलि देने की कोशिश और निपुणिका तथा भट्ट पर सम्मोहन का असर। उपन्यास में ये जो संकेत मिलते हैं उसका वर्णन नाटक में नहीं आ पाया है। नाटक में अघोरभैरव का पहला पक्ष ही आ जाता है।

विकारों के संदर्भ में अत्यंत सफल चर्चा सुचरिता के माध्यम से उपन्यास में की गई है। दुर्भाग्य से नाटक में सुचरिता की कथा स्थान न पा सकी है। हिंदू वैदिक धर्मशास्त्रों के अनुसार विकारों को दबा देना चाहिए। हिंदू तांत्रिक धर्म के अनुसार

विकारों को दबाना नहीं चाहिए, उसे पूरी तरह से अभिव्यक्त होने देना चाहिए और इन विचारों के प्रभाव से बने एक वैष्णव मत के अनुसार विकार भी मनुष्य के साथ ही जन्म लेते है वे उसे छोड़कर कहाँ जाएँगे। सुचरिता इस संदर्भ में कहती है, ''दीर्घ साधना भी आर्या महामाया के कल्मष को नहीं जला सकी। वस्तुत: कल्मष भी मनुष्य का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक हो सकता है। दबाने से वह मनुष्य को नष्ट कर देता है। समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्त से नारायण को नहीं सौंप दिए जाते, तब तक वे भार-मात्र है।''[13] भारतीय साधना क्षेत्र में विचारों का यह संघर्ष उपन्यास में बखुबी चित्रित किया गया है। लंबी साधना के बाद भी महामाया का कल्मष नहीं जलता। राजा महाराजा तो विकारों से बुरी तरह ग्रस्त है। सामान्य जन विकारों से छूटकारा पाने के चक्कर में बड़े भ्रम में पडते हैं। विकार ही धर्म उपदेशकों के जन को संभ्रम में डालने, या भ्रमित करने के भी साधन है। इस भ्रम से ही भ्रमित होकर जनता स्वयं को भी पापी मान बैठती है।

आत्मविश्वास का यह हनन किसी भी जनता, समाज या देश के हीत का नहीं होता। वह वास्तव में उस समाज के सभी दृष्टी से पतन की ओर जाने का रास्ता होता है। सुचरिता आचार्य वैंकटेश के उपदेश के कारण इस हीन भावना से बचती है। उसके आराध्य नारायण के उपदेश के पहले वह भी इसी भ्रम में थी। अब वह उस भ्रम से बचती है। अपने शरीर और जीवन को नारायण का प्रसाद मानती है। इस दृष्टी से देखें तो नारायण की भक्ति उसमें आत्मविश्वास भर देती है।

विकारों के संदर्भ में एक और तथ्य देखने को मिलता है। वह है दंपति जीवन तथा धर्म का संघर्ष और सहारा भी। इस उपन्यास में इस के दो उदाहरण है। एक महामाया और अघोरभैरव दूसरा सुचरिता और वैंकटेश भट्ट। ये दोनों दंपति विवाहित थे लेकिन अपने जीवन में आयी विचित्र स्थितियों के कारण वे पारिवारिक जीवन नहीं जी सके। फिर स्थितियों से समझौता करके विकारों को सत्य मानकर धर्म से संघर्ष करते हुए और धर्म का ही आधार लेकर वे साथ रहते है। उनके पति ही उनके गुरु भी है। नाटक में महामाया और अघोरभैरव दिखाई देते है, लेकिन उनका पूर्व इतिहास दिखाई नहीं देता। निपुणिका के संदर्भ में बच्चन सिंह विकारों को लेकर कहते है, ''निउनिया अभिशप्त वर्ग की नारी है। उसे अभिशाप की आग में निरंतर सुलगने का वरदान मिला है। वह अपने विकारों को दबा नहीं सकी क्यों कि वे सत्य थे।''[14] अर्थात विकारों का यह पक्ष नाटक में उतनी सफलता से नहीं आ पाया है।

छोटा सत्य-बड़ा सत्य

उपन्यास में सत्य के नाम असत्य जगह बना बैठा है, यह विचार जिस तरह

अभिव्यक्त हुआ है, उसी तरह छोटा सत्य और बड़ा सत्य यह विचार भी अभिव्यक्त हुआ है। सत्य की इतनी गहराई से व्याख्या और चिंतन करनेवाला यह अनोखा उपन्यास है। सत्य और असत्य की चर्चा के बाद सत्य का छोटा सत्य और बड़ा सत्य ऐसा विभाजित और उस पर चिंतन के द्वारा आचार्य जी सत्य को अखंड वस्तु के रुप में स्थापित करते है। सत्य की यह अखंडता यह दर्शाती है कि सत्य का छोटा और बड़ा ऐसा विभाजन नहीं हो सकता।

यह सत्य है कि सत्य विभाजित नहीं होता। फिर भी राजनीति, बल, धन और सामाजिक स्थान ऐसे कारक है जिसके आधार पर सत्य को छोटा या बड़ा माना जाता है, या छोटा या बड़ा सत्य बनाया जाता है। आदमी राजनीति, धन और सामाजिक स्थान की दृष्टी से छोटा हो तो उसका सत्य छोटा सत्य बन जाता है और बड़ा हो तो उसका सत्य बड़ा बन जाता है। विकारी मानव समाज का यह भी एक बड़ा विकार है। मानव कितना भी आधुनिक बुद्धिवादी या ज्ञानी होने का दावा करें वह इस छोटे और बड़े के सापेक्षी सत्य से छूटकारा नहीं पा रहा है। आज भी बड़े लोगों का दु:ख बड़ा और छोटे लोगों का दु:ख छोटा, उसी तरह उनकी सफलता भी छोटी। इस दृष्टी से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी का यह उपन्यास समकालीन भी है।

निपुणिका छोटी है। उसके छोटेपन की सीमा नहीं। समाज की नजर से वह चरित्रहीन नारी है। जब समाज ने अपनी दृष्टी ही तय की हो तब क्या हो सकता है। समाज यही मान लेगा कि वह छोटा काम ही करेगी। उसका बड़ा काम भी छोटा, अच्छा काम भी बुरा माना जाएगा। प्रस्तुत उपन्यास में तो निपुणिका ने बड़ा ही अपराध किया है। साथ ही बाणभट्ट द्वारा भी अपराध करवाया है। लेकिन निपुणिका की कृति अपने आप में एक सत्य है। किसी मनुष्य को उसकी इच्छा के विरुद्ध बंदी बनाकर रखना प्रकृति के विरोध में है। कोई धर्म ऐसे कृत्य को स्वीकार नहीं करेगा, फिर भी निपुणिका का यह कृत्य अपराध माना गया। धर्मत: वह अपराधी साबित हो, सकती है ऐसी स्थिती आयी लेकिन जब स्वार्थों की, हितों की बात आ गयी तो सब कुछ बदल गया।

आचार्य सुगतभद्र ने कुमार कृष्णवर्धन से कहा था कि गिरिवर्त्म के नीचे दस्युओं का संगठन हो रहा है। उन बर्बर आक्रमणकारियों से अगर बचना है तो देवपुत्र से सहायता लेना जरुरी है। जिस देवपुत्र तुवरमिलिन्द के बल पर इतना विश्वास है, उन्हीं की कन्या भगाई गयी और बन्दिनी बनाकर मौखरी वंश के राजा ने बंदी बनाया। उसी भट्टिनी को बचाने के अपराध में निपुणिका को मृत्युदंड मिलनेवाला था, उसी अपराध के बल पर राजा हर्षदेव तुवरमिलिन्द से मित्रता स्थापित करना चाहता है। यह कितना अंतर्विरोधी है। इसी को लेकर निपुणिका का बाण से प्रश्न है कि 'क्या छोटा

सत्य बड़े सत्य का विरोधी होता है?' बाण भी इस बात पर नाटक में चिंतन करते हुए कहता है, ''मेरे मर्मस्थल को बेधकर एक प्रश्न अन्तस्तल में गूँज उठा। क्या सचमुच छोटा सत्य बड़े सत्य का विरोधी होता है? वो मुझसे क्या आशा रखती है? अवधूत पाद की साधना इसलिए अधूरी है कि उन्हें विशुद्ध नारी का सहयोग नहीं मिला और निपुणिका की बलिदान-आकांक्षा इसलिए अपूर्ण है कि उसे पुरुष का सहारा नहीं मिला। सत्य क्या है?''[15] सत्य की यह खोज उपन्यास में निरंतर चलती रही है। आम जन के यह छोटे छोटे अपने सत्य हैं। यह सत्य लोगों के धन या सामाजिक राजनीतिक दृष्टी से छोटे होने के कारण छोटे बन जाते है और बड़े लोगों के असत्य भी सत्य बन जाते है। उपन्यास का यह उद्देश्य बड़े प्रभावी ढंग से नाटक में भी अभिव्यक्त होता है।

एक ही रागात्मक हृदय

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, इस उपन्यास के माध्यम से पूरे विश्व में एक ही रागात्मक हृदय का संधान करना द्विवेदी जी की नायिका भट्टिनी बाण से इस बारे में कहती है, ''एक जाति दूसरे को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है, भट्ट! तुम्हीं ऐसे हो जो नर-लोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो। मनुष्य लोभ-वश, मोह-वश, द्वेष-वश,पशुता की ओर बढ़ता आ रहा है, तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।''[16] प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से आचार्य द्विवेदी जी एक ही रागात्मक हृदय की जो अपेक्षा करते है वह वैश्विक है। पूरे विश्व में यह एक ही भावना का वह भी आनंद की भावना का संचार होना एक श्रेष्ठ उद्देश्य है। यह उद्देश्य भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करनेवाला है।

उपन्यास में मिस कैथराईन की चर्चा की गई है। वह ईसाई परिवार की कन्या थी। द्विवेदी जी ने कल्पना की है कि यह आत्मकथा की पांडूलिपी उस दीदी को मिली थी। अंत में फिर उस दीदी का पत्र दिया गया है जिसमें दीदी व्योम को यानी लेखक को ऑस्ट्रिया के समाचार सुनाती है। वह वर्णन कुछ इस तरह है, ''छह वर्षों से ऑस्ट्रिया के दक्षिणी भाग में निराधार और पस्तहिम्मती की जिन्दगी बिता रही हूँ। तुमने युद्ध के घिनौने समाचार पढ़े होंगे, लेकिन उसके असली निर्घृण क्रूर रुप को तुम लोगों ने देखा नहीं। देखते तो मेरी ही तरह तुम लोग भी मनुष्य-जाति की जययात्रा के प्रति शंकालु हो जाते। यह अच्छा ही हुआ कि तुमने यह घृणित नर-संहार नहीं देखा। यह मनुष्य का नहीं, मनुष्यता के वध का दृश्य था।''[17] पूरा उपन्यास समाप्त होने के बाद दीदी का यह पत्र और उसमें आधुनिक काल की बर्बर हिंसा का वर्णन दिया गया है। यह देने का

कारण क्या? क्या यह तो नहीं कि उपन्यासकार दिखाना चाहते हो कि हम आधुनिक काल में जी रहे है लेकिन हमने क्या विकास किया? क्या हम मानव बनने की विकासयात्रा में और अधिक बर्बर और हिंसक हो गए? प्राचीन काल में तो केवल मनुष्य का वध होता था, लेकिन आधुनिक काल के शस्त्रों और अस्त्रों ने मनुष्यता का ही वध किया।

मिस कैथराइन इस कथा को उपन्यासकार द्वारा आत्मकथा कहने के भी विरोध में थी। वह उसे 'ऑटो-बॉयोग्राफी' मानने का विरोध करती है। यानी उपन्यासकार इस से संकेत देते है कि इस कथा को कोई आत्मकथा न माने। यह कथा है। उस काल की और आज की भी। भारत की और ऑस्ट्रिया की भी और अन्य देशों की भी। इसी लिए कैथराइन द्वारा उपन्यासकार लिखते है, ''बाणभट्ट की आत्मा शोण नद के प्रत्येक बालुका कण में वर्तमान है।''[18] और फिर उसी कहानी को आगे बढ़ाते हुए उपन्यासकार यह भी कल्पना करते है दीदी को कोई श्रृगाल मिला था। वह बुद्धदेव का समसामायिक था। शायद बाणभट्ट का कोई समसामायिक जन्तु भी उन्हें मिला था। इसी सिलसिले में आचार्य जी लिखते है, ''शोण नद के अनन्त बालुका कणों में से न जाने किस कण ने बाणभट्ट की आत्मका की यह मर्मभेदी पूकार दीदी को सुना दी थी। हाय, उस वृद्ध हृदय में कितना परिताप संचित है। अस्त्रियवर्ष की यवनकुमारी देवपुत्र नन्दिनी क्या ऑस्ट्रिया-देशवासिनी दीदी ही हैं! उनके इस वाक्य का क्या अर्थ है कि 'बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते।''[19] इस तरह से उपन्यासकार बाणभट्ट की यह कथा सर्वकालिक और सर्वदेशिक बनाते हैं। वे इस मलाल में है कि वे दीदी को उनके बाणभट्ट के बारे में पूछ नहीं पाये। दीदी ने तो अपने आप को बाणभट्ट की नजर से देखा था। अब उस बाणभट्ट के हृदय का संधान पाने की कोशिश उपन्यासकार करते है। उनके बाणभट्ट के संधान पाने को व्याकूल हृदय का ही यह प्रतिफलन है। नाटक में मिस कैथराइन की कथा को अभिव्यक्त नहीं किया गया है। यह एक कमी नाटक में है। इस से नाटक के उद्देश्यों को और अधिक गरिमा प्राप्त होती। चूँकि भट्टिनी मिस कैथराइन का ही रुप है, उस के माध्यम से दीदी के एक ही रागात्मक हृदय को अभिव्यक्ति मिली है।

नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय की कल्पना भट्टिनी की है। वह विभिन्न प्रदेशों से घूम घूमकर आयी है। वो राजा की कन्या है। राज खानदान का ऐशोआराम का जीवन भी उन्होंने जिया है और वह बंदिनी भी रही है। एक तरह से जेल का जीवन भी वह जी चुकी है जो एक सामान्य व्यक्ति के जीवन जैसा है। जीवन के इतने उतार चढ़ाव देखने के बाद एक प्रकार की विरक्ति भी उनके वर्तन में दिखाई देती है। उसी संवेदना से वह यवनों के जीवन से भारतीयों के जीवन को देखती है। उन

दोनों जीवन शैलियों की तुलना भट्टिनी करती है। और वह अपना उद्देश्य बाण भट्ट के सामने रखती है।

एक ही रागात्मक हृदय के संधान के साधन के रुप में भट्टिनी साहित्य को देखती है। द्विवेदी जी अपने निबंधों में अपने साहित्य विषयक दृष्टि को व्यक्त कर चुके है। उन्होंने लिखा है, ''जो साहित्य हमारी वैयक्तिक क्षुद्र संकीर्णताओं से हमें उपर उठा ले जाये और सामान्य मनुष्यता के साथ एक कराके अनुभव कराये, वही उपदेय है। उसके भाव-पक्ष के लिए किसी देश विशेष या कालविशेष की नैतिक आचार-परम्परा का मुँह जोहना आवश्यक नहीं है। हमें दृढता से केवल एक बात पर अटल रहना चाहिए, और वह यह कि जिसे काव्य, नाटक या उपन्यास साहित्य कहकर हमें दिया जा रहा है, वह हमें हमारी पशु-सामान्य मनोवृत्तियों से उपर उठाकर समस्त जगत के सुख-दु:ख को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देता है या नहीं।''[20] आचार्य द्विवेदी जी का यह भी एक श्रेष्ठ विचार और उद्देश्य है कि वे साहित्य का महत्त्व दुनिया के सामने रखना चाहते हैं। वे स्वयं साहित्य के महत्त्व को अपने निबंधों में अभिव्यक्त कर चुके हैं। उन्होंने लिखा है, ''मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य है और उसे मनुष्य पद का अधिकारी बने रहने के लिए साहित्य ही एकमात्र सहारा है।''[4] भट्टिनी बाण को भारतवर्ष का द्वितीय कालिदास कहती है। साहित्य की यह महत्ता उपन्यास के माध्यम से बड़ी सफलता से नाटक में अभिव्यक्त हुई है। उपन्यास का यह उद्देश्य इस तरह से दर्शकों में भी संप्रेषित होता है।

उपन्यास के नाट्यरुपांतरण के सफलता असफलता की यह चर्चा है। उपन्यास के अधिकतम उद्देश्य नाट्य रुपांतरण में अभिव्यक्त हुए है। एक और दृष्टी से नाटक का अध्ययन करना जरुरी है, वह है अभिनेयता। नाटक तब तक नाटक नहीं है, जब तक वह रंगमंच पर न आ जाए। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' इस नाटक का मंचन भी हुआ है। उस दृष्टी से नाटक का अध्ययन होना आवश्यक है।

अभिनेयता

'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक का मंचन पहली बार राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के अभिमंच पर 15-16 एवं 17 मई 2007 को हुआ है। इसके निर्देशक प्रसिद्ध रंगकर्मी एम. के. रैना है। यह नाटक अक्तुबर-दिसंबर 2007 के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के त्रैमासिक वृत्त रंग प्रसंग में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रंगप्रसंग पत्रिका में प्रकाशित नाट्यसंहिता का उपन्यास के आधार पर अध्ययन करना है। नाटक का मंचन संहिता के आधार पर होता है। अगर नाट्यसंहिता, अच्छी हो तो ही उसका अच्छा मंचन होगा। एक परिपूर्ण नाट्यसंहिता पर श्रेष्ठ अभिनेताओं द्वारा

अभिनय नाटक को बड़ी सफलता प्राप्त करा देता है। लेकिन खराब नाट्यसंहिता पर श्रेष्ठ अभिनेता भी अपने अभिनय द्वारा नाटक सफल नहीं बना सकते। इस कारण अभिनेताओं से नाट्यसंहिता का महत्त्व ज्यादा ही होता है। इस कारण स्वतंत्र रुप से नाटकों की संहिता का अध्ययन करने की परंपरा विश्व की हर भाषाओं में है। प्रस्तुत अध्ययन भी उस दृष्टी से किया गया है। फिर भी नाटक का मंचन होना, रंगमंच पर नाटक देखना एक परिपूर्ण आनंद है। नाटक की अभिनेयता के संदर्भ में गोविन्द चातक कहते है, ''नाटक के लिए रंगमंच उसे दृश्यत्व प्रदान करता है। वह एक ऐसे स्थूल भौतिक स्वरुप की सृष्टि करता है, जिसमें जीवंतता, गति और भंगिमाएँ होती है। मंच नाटक का भौतिक, मानसिक और भावात्मक रुपान्तरण करता है। उसकी एक बड़ी देन नाटक के लिए यह भी होती है कि वह नाटक के रिक्त स्थलों की पूर्ति में भी सहायक होता है।''[22] प्रस्तुत नाटक का मंचन पहले ही हुआ है और प्रकाशन बाद में, इस कारण अध्ययनकर्ता को प्रत्यक्ष रुप में नाटक देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय अपने अभिमंच पर प्रस्तुत होनेवाले नाटकों की सी.डी.रिकार्ड करता है और अध्ययन कर्ताओं को व्हिडियो लाइब्रेरी में यह सी.डी. देखने की सुविधा होती है। अध्ययनकर्ता ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की व्हिडियो सी.डी. देखने की सुविधा का लाभ उठाया है। उसी के आधार पर मंचन संबंधी अपने कुछ विचार व्यक्त किए है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में रिकार्ड की गयी व्हिडियो सी.डी. केवल सी.डी. रिकार्ड के लिए नहीं की गयी है। अभिमंच पर होनेवाले मंचन की वह सी.डी.है जिसमें आवाज के साथ साथ दर्शकों की तालियाँ भी आ गयी है। व्हिडियो बहुत स्पष्ट नहीं लेकिन अच्छा है। उसके आधार पर मंचन को समझा जा सकता है। नाटक का आरंभ शंखध्वनि और विभिन्न लोकवाद्यों के साथ होता है। यह किसी उत्सव के जैसा है। पूरे नाटक में ऐसे कई दृश्य है जहाँ पर इन लोकवाद्यों का प्रयोग कर लोकोत्सवों का सुंदर मंचन किया गया है।

नाटक आरंभ होता है। नाटकों के संवाद हर अभिनेता एक अनावश्यक उत्तेजना में अभिव्यक्त करता दिखाई देता है। उन संवादों के उच्चारण में वह गंभीरता नहीं है जो मूल संवादों में है। निपुणिका हो या बाणभट्ट बड़े उत्तेजित आवाज में अपने संवाद बोलते है। शायद यह मंचीय कठिनाई हो या तांत्रिक, लेकिन मंचन में यह हुआ है। कुछ जगह पर मूल नाटक में न आनेवाले संवाद भी आ गए है। जैसे बाणभट्ट के स्त्री वेश के प्रवेश में 'मित्तिया- आय हाय?' यह संवाद एक स्त्री पात्र बोलती है। यह मूल नाट्य संहिता में कहीं भी नहीं है।

आर्य वाभ्रव्य के तीन -चार ही संवाद है लेकिन वे भी बड़ी उत्तेजना भरे।

आवाज के उतार चढ़ाव से संवादों का प्रभाव निर्माण होता है, इस ओर किसी अभिनेता ने ध्यान ही नहीं दिया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सब कुछ बड़ी हडबडी में, बहुत जल्दी में हो रहा है। अतिअभिनेयता यह भी एक दोष अभिनेताओं में दिखाई देता है।

सौगत सुगतभद्र के साथ संवाद में देवपुत्र के संदर्भ में कहे गए संवाद बड़े सुंदर बने हैं। सौगत सुगतभद्र उपन्यास और नाटक में भी एक वृद्ध पात्र है। मंचन में यह पात्र युवा है और उसके संवाद भी एक युवक जैसे ही है। ऐसा लगता है कि यह सहज नहीं है। अभिनेता अभिनय कर रहे है और जैसे सब एक ही शैली में अभिनय कर रहे है। इससे तात्पर्य यही नहीं की सब कुछ बुरा ही है। होलिकोत्सव का दृश्य बड़ा ही प्रभावी है। शिविकाओं में बैठने का दृश्य बड़ा सुंदर है। वहाँ बाणभट्ट और निपुणिका का नृत्य बड़ा अनावश्यक है लेकिन भट्टिनी का लजाने का अभिनय बेहद सुंदर है। नाव जाने का दृश्य भी बड़ा ही प्रभावी बन पड़ा है।

दृश्य 5 में अघोरभैरव का प्रवेश है। अघोरभौरव का हास्य बड़ा ही विकट हास्य है। यहाँ पर भी नाटक में वर्णित अघोरभैरव की तुलना में पात्र युवा दिखाई देता है। अगले दृश्य में बाणभट्ट का विग्रहवर्मा पर शस्त्र लेकर जाना दिखाया गया है जो नाट्य संहिता में नहीं है।

सम्मोहन का दृश्य बहुत ही अच्छा बना है। यहीं से नाटक में अभिनय की सही शुरुआत होती है। यहाँ से नाटक अतिनाटकीय न रहकर नाटक बन जाता है। स्त्री पुरुषों के विधिरुप निषेधरुप की व्याख्या, प्रत्यंत दस्युओं की चर्चा, भर्वूशर्मा का पत्र आदि अच्छा प्रभाव निर्माण करते है। यहाँ से निपुणिका के अभिनय में भी निखार आ गया है। उसके संवाद भी बेहद प्रभावी हो जाते है। यहाँ पर महामाया के संवाद की शैली और सभा को संबोधन बहुत ही प्रभावी हो गया है। ''मृत्यू का भय माया है।'' यह संवाद एक तीर की तरह पाठकों के मन में प्रभाव निर्माण करता है। इस नाटक में लोरिकदेव का अभिनय अत्यंत सुंदर है। अपनी स्वतंत्रता और समुद्रगुप्त के संदर्भ में उनका संवाद बहुत सुंदर बना है।

नाट्य रुपांतरकार ने नाटक में जो रत्नावली की कथा जोड़ दी है उस का भी अभिनय अच्छा बन पड़ा है। 'मौन मन कुछ बोल रहा है, बन्द बाजा खोल रहा है' यह गीत नाट्य कृति में एक अनोखा रंग भर देता है। कुलमिलाकर नाट्य अभिनय इस तरह से हुआ है। जैसे कि उपर कहा गया है, अभिनय की प्रभावोत्पादकता पर अभिनेता की कुशलता का असर होता है। अभिनेता उसे प्रभावी बना सकते है या कभी प्रभावहीन भी। कभी कभी एक ही अभिनेता का अभिनय किसी दिन प्रभावी नहीं हो सकता। यह बहुत कुछ स्थितियों, अभिनेताओं और निर्देशक पर निर्भर करता है। जैसे कि उपर कहा

गया है नाटक की संहिता का अध्ययन करना इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य है और उसी दृष्टी से यह अनुसंधान कार्य किया गया है।

एक विधा के अन्य विधा परिवर्तन में जो सुक्ष्म परिवर्तन होते है, उनकी चर्चा प्रस्तुत अनुसंधान में करने की कोशिश की गयी है। विधा परिवर्तन में उपन्यास के उद्देश्य नाटक के द्वारा अभिव्यक्त होते है या नहीं यह महत्त्वपूर्ण प्रतिमान मानकर नाट्य रुपांतरण की सफलता को परखा गया है। उपन्यास में ही अभिव्यक्त कुछ कथनों के आधार पर उपन्यास के उद्देश्य स्पष्ट होते है। उन्हीं उद्देश्यों को लेकर जब नाटक की सफलता को देखा गया तो यह स्पष्ट हुआ कि भले ही उपन्यास के पूरे उद्देश्य नाटक में अभिव्यक्त नहीं होते लेकिन अधिकतम उद्देश्य नाटक में अभिव्यक्त हुए है और उस आधार पर हम यह कह सकते है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का यह नाट्यरुपांतरण सफल हुआ है। विधा परिवर्तन की यह कोशिश निश्चित ही एक सफल कोशिश है और विधा परिवर्तन के लिए एक दिशा देनेवाली साबित होती है। नाट्य रुपांतरकार ने जिस व्यावसायिक लगन से यह कार्य किया है वह निश्चित ही रंगकर्मीयों और लेखन के लिए प्रेरणादायी होगा।

संदर्भ संकेत

1) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.241
2) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग, अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.158
3) हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ.54
4) हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ.54
5) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.101
6) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग, अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.184
7) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग, अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.155
8) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.137
9) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.161
10) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग,अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.185
11) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग, अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.186
12) रचना के सरोकार, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, पृ.101
13) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.212
14) उपन्यास का काव्यशास्त्र, बच्चन सिंह, पृ.128
15) बाणभट्ट की आत्मकथा, नाटक, रंगप्रसंग, अमिताभ श्रीवास्तव, पृ.191
16) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.257

17) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.290
18) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.290
19) बाणभट्ट की आत्मकथा, ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.291
20) हिन्दी आलोचना के आधारस्तंभ,सं. खंडेलवाल, पृ.126
21) कल्पलता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.148
22) रंगमंच कला और दृष्टि, गोविंद चातक, पृ.15